धर्म क्या कहता है ? : ४

वैदिक धर्म क्या कहता है ?

(तीसरा भाग)

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

•

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : मत्री, सर्व-सेवा-सघ,
राजघाट, वाराणसी

सस्करण : प्रथम दिसम्बर, १९६३ ३,०००
द्वितीय · फरवरी, १९६५ . ५,०००

कुल प्रतियाँ ८,०००

मुद्रक नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

मूल्य ६० पैसे

Title VAIDIK DHARMA KYA KAHATA HAI ? (3)
Author Shrikrishna Datta Bhatta
Subject Religion
Publisher Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition Second
Copies 5000, February, '65
Total Copies 8,000
Price 60 Paise

प्रकाशकीय

'धर्म क्या कहता है ?' पुस्तक-मालाकी पहली पुस्तक है 'धर्मोंकी फुलवारी'। उसमें बताया गया है कि ससारमे फैले अनेक धर्मोंमें बाहरी भिन्नताके वावजूद सबके भीतर, सबकी बुनियादमें, एक ही भावना है सत्य, प्रेम और करुणा।

पुस्तक-मालाकी दूसरी पुस्तक है 'वैदिक धर्म क्या कहता है ?' (पहला भाग)। हिन्दू-धर्मका मूल आधार है वेद। उसके चार भाग है. १ सहिता, २ ब्राह्मण, ३ आरण्यक और ४ उपनिषद्। चारोकी एक हलकी-सी झाँकी देकर उसमें बताया गया है कि वैदिक धर्म क्या है और उसमें क्या कहा गया है।

इसी पुस्तक-मालाकी तीसरी पुस्तक है 'वैदिक धर्म क्या कहता है ?' (दूसरा भाग)। इसमें हिन्दू-धर्मके अन्य आधार-ग्रन्थो—स्मृति, वाल्मीकि-रामायण, योगवाशिष्ठ, महाभारत तथा दर्शन-शास्त्रोकी हलकी-सी झाँकी दी गयी है।

इसी पुस्तक-मालाकी यह चौथी पुस्तक है—'वैदिक धर्म क्या कहता है ?' (तीसरा भाग)। इस पुस्तकमें हिन्दू-धर्मके विशिष्ट अग भागवत धर्मका परिचय दिया गया है। इसमें गीता, पुराण, भागवत तथा तुलसी-रामायणकी हलकी-सी झाँकी देकर बताया गया है कि वैदिक धर्मके पीछे एक ही मूल प्रेरणा है · सत्य, प्रेम, और करुणा।

हम मानते है कि हमारी 'धर्म क्या कहता है ?' पुस्तक-मालाका सर्वत्र स्वागत होगा।

●

अनुक्रम

●

: १ :

हिन्दू धर्ममे भक्तिकी धारा ही भागवत धर्मके रूपमे विकसित हुई है। पुराण और भागवत, गीता और रामायण हिन्दू धर्मके गलेका हार है।

वेद तो सबका आधार है ही, पर वे है कठिन। शास्त्र भी साधारण लोगोकी समझके परे है।

जनताको तो वही बात रुचती और पचती है, जो सीधे-सरल ढगसे कही जाय और जिसकी भाषा दिलको छूनेवाली हो।

ॐ, ब्रह्म, निराकार, निर्गुण परमात्माकी बात लोगोको समझनेमे कडी पडती है। पर सगुण, साकार भगवान्की बात आसानीसे गले उतर जाती है।

गोपियाँ ऊधोसे पूछती है

निरगुन कौन देसको बासी ?

छोडोजी, निर्गुण निराकारकी बात। हमे तो सगुण-साकारकी बात सुनाओ।

गोपियोकी भाषामे भक्तका ही हृदय बोलता है। भागवत धर्ममे भक्तकी यह भावना ही साकार हो उठी है।

भक्ति का तत्त्व

युग-युगसे मानव-हृदयमे एक प्यास है। एक छटपटाहट है। वह अपने प्रियतमसे, अपने प्रेमास्पदसे मिलनेको अधीर है। जबतक वह उससे मिल नही पाता, उसके विरहमे पड़ा तडफडाता रहता है।

विरहकी यह अवधि कैसे बीतती है, इसकी कल्पना गोपियो-के विरहसे अथवा अशोक-वाटिकामे सीताके विरहसे की जा सकती है। उस आकुलतामे भी रस है। सीता कहती है

अवगुन एक मोर मैं माना।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हिको अपराधा।
निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छिन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरैं न पाव देह बिरहागी॥

भरत का भी वही हाल है·

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू॥

भक्ति के साधन

विरह या मिलन, भक्त दोनो स्थितियोका स्वागत करता है।

वस्लमें हिज्रका गम हिज्रमें मिलनेकी खुशी,
कौन कहता है जुदाईसे विसाल अच्छा है ?

इसके लिए उसका ध्यान एक ही बातकी ओर रहता है और वह है :

अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोयी !

आँसू बहा-बहाकर, हृदयको धो-धोकर वह स्वच्छ बनाता है और तभी उसकी प्रेमकी बेल लहलहाती है।

उसके सारे कर्म प्रियतमके लिए होते हैं :

जो कछु करौं सो पूजा !

खाना-पीना हो, पहनना-ओढना हो, कोई भी काम हो—वह प्रियतम की प्रसन्नताके लिए ही करता है।

ऐसे व्यक्तिसे, ऐसे साधकसे, ऐसे भक्तसे ऐसा कोई काम होगा ही कैसे, जो गलत हो, जिसमे किसीका जी दुखे ? ऐसे भक्तको तो हर जगह अपने ही प्रभुकी माधुरीके दर्शन होते हैं। उसका रोम-रोम पुकारता है

जित देखो तित श्याममयी है।
श्याम कुंजबन जमुना श्यामा,
श्याम गगन घनघटा छई है।
सब रंगनमें श्याम भरो है,
लोग कहत यह बात नयी है॥

जो व्यक्ति घट-घटमे परम प्रिय भगवान्के दर्शन करेगा, उसके हृदयमे सत्य, प्रेम, करुणा छोड और होगा ही क्या ? ●

: २ :
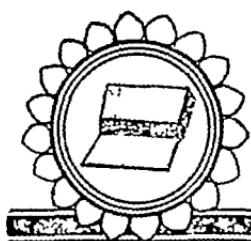
धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमे आमने-सामने कौरवो और पाण्डवोकी सेना खडी है। अर्जुन कहता है कृष्णसे "भगवन्, साग-पात खा-कर भी पेट भरा जा सकता है, बिना राज्यके भी जिया जा सकता है। फिर मै खूनकी नदी क्यो बहाऊँ?"

कृष्ण कहते है "कहाँसे आ घेरा तुम्हे मोह ने? ऐ अर्जुन! यह न तो तुम्हे शोभा देता है, न उचित है।"

और उसके बाद कृष्णने तरह-तरहसे अर्जुनको समझाया कि शरीर क्या है, आत्मा क्या है, कर्म क्या है, अकर्म क्या है, ज्ञान क्या है, भक्ति क्या है, दैवी सम्पत्ति क्या है, आसुरी सम्पत्ति क्या है?

अर्जुन समझ गया। बोला

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

अच्युत! तुम्हारी कृपासे मेरा मोह अब चला गया है। स्मृति मुझे प्राप्त हो गयी है। सशयरहित स्थितिको मै पहुँच गया हूँ। अब मै वही करूँगा, जो तुम कहोगे।

मोहको मिटानेवाला गीताका यह ज्ञान अर्जुनके लिए जैसा गुणकारी सिद्ध हुआ, हम सबके लिए भी हो!

प्रज्ञा है उसकी स्थिरा : १ :

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

हे अर्जुन! जब मनुष्य अपने मनमे उठनेवाली सारी इच्छाओको त्याग देता है, आत्मासे ही आत्मामे सतुष्ट रहता है, तब उसकी प्रज्ञा, उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा कहा जाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

दु:ख मिलनेपर जिसे उद्वेग नही होता, सुखो की जिसे स्पृहा नही है, जिसमे न राग है, न भय है, न क्रोध, उसे मुनि लोग 'स्थितप्रज्ञ' कहते है।

य: सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

जो किसीमे ममता नही करता, शुभको पाकर जो तुष्ट नही होता, अशुभको पाकर जो रुष्ट नही होता, उसकी बुद्धि स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

कछुआ जिस तरह अपने अगोको समेट लेता है, उसी तरह

जो पुरुष अपनी इन्द्रियोको उनके विषयोसे समेट लेता है, वह स्थितप्रज्ञ है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

इन्द्रियोके द्वारा विपयोको ग्रहण न करनेसे विपय तो छूट जाते है, पर उनका रस नही छूटता । वह तभी छूटता है, जब परमात्माके दर्शन हो जाते है ।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

हे अर्जुन ! बुद्धिमान् मनुष्य कोशिश करता है, फिर भी मथ डालनेवाली इन्द्रियाँ जबरन मनको खीच ले जाती है।

तानि सर्वाणि सयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

उन सब इन्द्रियोको सयमसे वशमे करके भगवान्मे मन लगाये। जिसकी इन्द्रियाँ उसके वशमे रहती है, उसीकी बुद्धि स्थिर होती है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

भोगोका चिन्तन करनेसे उनमे आसक्ति पैदा हो जाती है। आसक्तिसे उन्हे भोगनेकी इच्छा पैदा होती है। उससे क्रोध होता है। क्रोधसे मोह होता है। मोहसे स्मृतिमे भ्रम होता है। उससे बुद्धिका नाश हो जाता है। बुद्धिका नाश होनेसे आदमी कहीका नही रहता।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

जिस आदमीने राग-द्वेषसे छुटकारा पा लिया है और इन्द्रियोको अपने वशमे कर रखा है, वह उनके भोग भोगता हुआ भी अन्त करण की प्रसन्नताको प्राप्त कर लेता है।

प्रसादे सर्वदु.खानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

कछुआ जिस तरह अपने अगोको समेट लेता है, उसी तरह
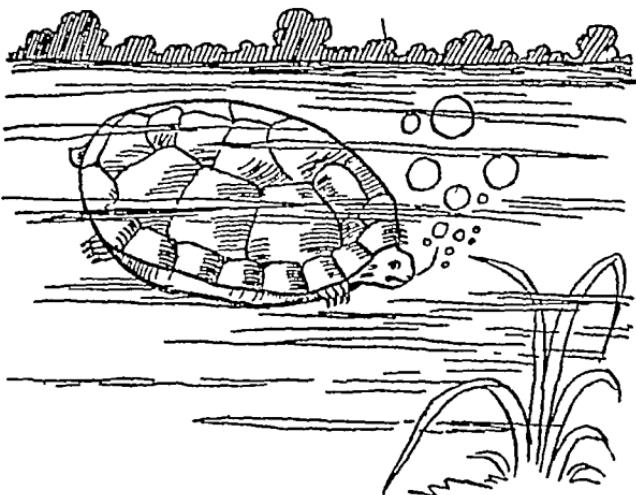
जो पुरुष अपनी इन्द्रियोको उनके विषयोसे समेट लेता है, वह स्थितप्रज्ञ है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

इन्द्रियोके द्वारा विषयोको ग्रहण न करनेसे विषय तो छूट जाते है, पर उनका रस नही छूटता । वह तभी छूटता है, जब परमात्माके दर्शन हो जाते है ।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

हे अर्जुन ! बुद्धिमान् मनुष्य कोशिश करता है, फिर भी मथ डालनेवाली इन्द्रियाँ जबरन मनको खीच ले जाती है।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

उन सब इन्द्रियोको सयमसे वशमे करके भगवान्मे मन लगाये । जिसकी इन्द्रियाँ उसके वशमे रहती है, उसीकी बुद्धि स्थिर होती है ।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

भोगोका चिन्तन करनेसे उनमे आसक्ति पैदा हो जाती है । आसक्तिसे उन्हे भोगनेकी इच्छा पैदा होती है । उससे क्रोध होता है । क्रोधसे मोह होता है । मोहसे स्मृतिमे भ्रम होता है । उससे बुद्धिका नाश हो जाता है । बुद्धिका नाश होनेसे आदमी कहीका नही रहता ।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

जिस आदमीने राग-द्वेषसे छुटकारा पा लिया है और इन्द्रियो-को अपने वशमे कर रखा है, वह उनके भोग भोगता हुआ भी अन्त करण की प्रसन्नताको प्राप्त कर लेता है ।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

जिसका अन्त करण प्रसन्न होता है, उसके सब दु ख दूर हो जाते है। ऐसे आदमीकी बुद्धि बहुत जल्दी स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

जो अयुक्त है, योगी नही है, प्रसन्नचित्तवाला नही है, उसमे न बुद्धि रहती है, न भावना। बिना भावनाके शान्ति कहाँ ? अशान्त आदमीको सुख कहाँ ?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

इन्द्रियोके विषयोमे विचरनेवाला, उनके पीछे दौडनेवाला मन मनुष्यकी बुद्धिको उसी प्रकार खीच ले जाता है, जिस प्रकार पानीमे नावको हवा खीच ले जाती है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

इसलिए हे महाबाहो, जो मनुष्य विपयोसे इन्द्रियोको बिलकुल समेट लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर रहती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति सयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सब प्राणियोके लिए जो रात्रि है, सयमीके लिए वह दिन है। ससारी लोगोके लिए जो दिन है, मुनियोके लिए वही रात्रि है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

चारो ओरसे भरे हुए अचल समुद्रमे नदी और नद, जिस तरह समा जाते है, उसी तरह जिस आदमीकी सारी कामनाएँ उसीमे समा जाती है, उसे शान्ति प्राप्त होती है । कामनाओके पीछे दौडनेवालेको शान्ति नही मिलती ।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

शान्ति उसे मिलती है, जो सारी कामनाओको त्याग देता है, जिसे किसीकी ममता नही रहती, किसी वातका अहकार नही रहता, किसी बातकी स्पृहा नही रहती ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥[1]

यह है ब्राह्मी स्थिति । हे पार्थ, इसे पाकर मनुष्य मोहमे नही पडता । अन्तकालमे इससे ब्रह्मानन्द प्राप्त हो जाता है ।

---

१ गीता २ । ५५—७२

कर्म कर : फल भगवानपर छोड़ : २ :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।[1]

कर्म करना ही तेरे अधिकारकी बात है, फल नही। न तो तू कर्मके फलकी इच्छा कर और न हाथपर हाथ रखे हुए अकर्मण्य बनकर बैठ रह।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते ।।[2]

हे अर्जुन, तू तो आसक्ति छोडकर कर्म करता चला जा। उसमे सफलता मिले या असफलता, दोनोको एक-सा मान। इसी समभावको 'योग' कहा जाता है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।[3]

हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ तपस्या करता है, वह सब मुझे ही अर्पण कर दे।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ।।[4]

भगवान् कहते है कि कर्मोका फल मुझे अर्पण करनेसे तू सन्यास-योगवाला हो जायगा। शुभ और अशुभ कर्मफलोसे तू मुक्त हो जायगा और तव तू मुझे ही प्राप्त होगा।

---

१ गीता २।४७। २ वही २।४८। ३ वही ९।२७। ४ वही ९।२८

चोला ही तो है ! : ३ :

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥[1]

आत्माका न तो जन्म होता है, न मृत्यु । यह फिर फिर होनेवाला नही है । यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है । शरीरके नाश होनेपर भी इसका नाश नही होता ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥[2]

कपड़े जब जर्जर होते है, तब उन्हें फेंक हम देते हैं ।
उनके बदलेमें पहन साफ, अरु सुन्दर कपड़े लेते हैं ॥
आत्माका कपड़ा यह तन है, जब यह जर्जर हो जाता है ।
तब इसे फेंक वह देता है, अरु नूतन तनमें जाता है ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥[3]

आत्माको न तो हथियार काट सकते है, न आग जला सकती है । जल इसे गीला नही कर सकता । वायु इसे सुखा नही सकती ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥[4]

---

१ गीता २।२० । २. वही २।२२ । ३. वही २।२३ । ४. वही २।१३

जीवात्माकी इस देहमे जैसे कुमार अवस्था होती है, युवा अवस्था होती है, वृद्धावस्था होती है, उसी तरह दूसरे शरीरकी भी प्राप्ति होती है। धीर पुरुष इस विषयमे कोई मोह नही करते।

ऐसा भक्त भगवान्‌को प्यारा है : ४ :

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥[1]

---

१ गीता १२।१३—२०

भगवान् कहते है कि ऐसा भक्त मुझे परम प्रिय है :

जो किसी प्राणीसे द्वेप नही करता। सबका मित्र है। दयालु है। जिसमे न ममता है, न अहकार। सुख, दु ख दोनो जिसके लिए समान है। जो क्षमावान् है।

जो सदा सतोपी हे। योगी है। शरीर, इन्द्रिय और मनको वशमे रखता है। दृढ निश्चयवाला है। मन और बुद्धि जिसने भगवान्‌को अर्पित कर रखी हे।

न तो उससे किसी जीवको उद्वेग होता है, न उसे किसी जीव से उद्वेग होता है। उसे न तो हर्प है, न सताप। न भय है, न और कोई उद्वेग।

उसे किसी चीजकी आकाक्षा नही रहती। बाहर, भीतरसे वह पवित्र रहता है। चतुर होता है। किसीका पक्षपात नही करता। दु खोसे मुक्त रहता है। कर्ममे कर्तापनका अभिमान नही रखता।

वह न किसी बातसे प्रसन्न होता है, न दु खी। न किसी बातका सोच करता है, न कुछ चाहता है। शुभ और अशुभ सभी कामोका फल उसने छोड रखा है।

मित्र और शत्रुमे उसका एक-सा भाव रहता है। मान और अपमान, गर्मी और सर्दी, सुख और दु ख उसके लिए बराबर है। ससारमे उसकी कोई आसक्ति नही है।

निन्दा और स्तुति उसके लिए बराबर है। मौनी है।

जो मिले, उसीमे सतुष्ट है। किसी स्थानमे उसे ममता नही रहती।

भगवान्के ऐसे श्रद्धालु भक्त, जो निष्काम भावसे इस धर्म-मय अमृतका सेवन करते है, वे भगवान्को अत्यन्त प्रिय है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥[1]

जिनके पाप नष्ट हो गये है, सशय दूर हो गये है और जो सब प्राणियोके हितमे लगे है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष परम ब्रह्मको प्राप्त होते है।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥[2]

इन्द्रियोको जिन्होने वशमे कर रखा है, सब जगह जो सम-बुद्धिसे बरतते है और सभी प्राणियोके कल्याणके काममे लगे है, उन्हे भगवान्की प्राप्ति होती है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जित. ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥[3]

हे अर्जुन, जो सब कर्म मुझे समर्पण करता है, मेरे लिए तत्पर है, मेरा भक्त है, किसीमे आसक्ति नही रखता और किसी भी प्राणीसे वैर नही रखता, वह मुझे ही प्राप्त करता है।

---

१ गीता ५।२५। २ वही १२।४। ३ वही ११।५५

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥[1]

ज्ञानी लोग विद्वान् और विनयी ब्राह्मणमे, गौमे, हाथीमे,

कुत्तेमे, चाण्डालमे समभावसे देखते है । वे जानते है कि सबके भीतर एक ही परमात्मा विराजमान है ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥[2]

जो आदमी भगवान् को सब जगह देखता है और भगवान्मे ही सबको देखता है, न तो भगवान् उसकी आँखसे ओझल होते है और न वह भगवान्की आँखसे ओझल होता है ।

---

१ गीता ५।१८ । २ वही ६।३०

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥[१]

जो आदमी नाश होनेवाले चर और अचरके भीतर नाश न होनेवाले परमेश्वरको सभी प्राणियोमे समभावसे विराजमान देखता है, उसीका देखना सार्थक है।

यज्ञ : दान : तप : ६ :

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥[२]

यज्ञ, दान और तप अवश्य करने चाहिए। इन्हे कभी नही छोडना चाहिए। ये बुद्धिमानोको पवित्र करते है।

यज्ञ

इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥[३]

यज्ञसे सम्मानित देवता बिना माँगे ही भोग देगे। जो आदमी उनके द्वारा दिये भोगोको उन्हे समर्पित किये बिना भोगता है, वह निश्चय ही चोर है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥[४]

१ गीता १३।२७। २ वही १८।५। ३ वही ३।१२।
४ वही ३।१३

यज्ञसे बचे हुए अन्नको जो खाते हैं, वे सब पापोसे छूट जाते है। पापी लोग सिर्फ अपने शरीरके लिए ही बनाते-पकाते हैं। वे पापको ही खाते हैं।

दान

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥[1]

दान देना कर्तव्य है---ऐसा मानकर देश, काल और पात्रको देखकर प्रत्युपकार न करनेवालेको दिया दान सात्त्विक दान है।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥[2]

जिससे मनमे क्लेश हो, जिसमे प्रत्युपकारका भाव हो और जो फलके उद्देश्यसे दिया जाय, वह राजस दान है।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥[3]

बिना सत्कारके तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमे कुपात्रको जो दान दिया जाता है, वह तामस दान है।

तप

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥[4]

---

१ गीता १७।२०। २ वही १७।२१। ३ वही १७।२२। ४ वही १७।१४

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानियोकी पूजा करना, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिसाका पालन करना--यह है शारीरिक तप, शरीरका तप।

अनुद्वेगकरं वाक्य सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङमयं तप उच्यते ॥[1]

किसीको उद्वेग न करनेवाला, कष्ट न देनेवाला, सत्य, प्रिय, हितकर वचन बोलना और स्वाध्याय करना--यह है वाचिक तप, वाणीका तप।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥[2]

मनकी प्रसन्नता, शात भाव, मौन, मनको वश मे रखना और अत करणकी पवित्रता--यह है मानसिक तप, मनका तप।

दैवी सम्पदा : आसुरी सम्पदा :७:

अभय सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थिति·।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दव ह्रीरचापलम् ॥
तेज· क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥[3]

---

१ गीता १७।१५। २ वही १७।१६। ३ वही १६।१-३

दैवी सम्पदाके लक्षण है · अभय, अन्त करणकी शुद्धि, ज्ञानमे दृढ स्थिति, दान, इन्द्रियोका दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, कर्तापनके अहकारका त्याग, शाति, किसीकी निन्दा न करना, सब प्राणियोपर दया, विषयोकी लोलुपता न रखना, कोमलता, लज्जा, चपलताका न होना, तेज, क्षमा, धैर्य, भीतरी-बाहरी पवित्रता, किसीसे वैर न करना और अभिमान न करना ।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध. पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ [१]

आसुरी सम्पदाके लक्षण है पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कडवी वाणी और अज्ञान ।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता । [२]

दैवी सम्पत्ति मुक्तिके लिए है, आसुरी सम्पत्ति बन्धनके लिए ।

नरकसे कैसे बचें ? : ८ :

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

आत्माको गिरानेवाले नरकके तीन द्वार है : काम, क्रोध और लोभ । इन तीनोको छोड देना चाहिए ।

---

१ गीता १६।४ । २ वही १६।५ । ३ वही १६।२१

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ [१]

अर्जुनने पूछा : हे कृष्ण, यह तो बताओ कि आदमीको कौन जबरन खीचकर पापकी ओर ले जाता है ?

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ [२]

रजोगुणसे पैदा यह काम है, क्रोध है । भोग भोगनेकी इसकी लालसा ही नही मिटती । बडा पापी है यह । इसे ही अपना वैरी जानो ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ [३]

हे कृष्ण, यह मन बडा चचल है । आदमीको मथ डालता है । बडा बलवान् है यह मन । मुझे तो लगता है कि इसे वशमे करना वैसा ही कठिन है, जैसा वायुको वशमे करना ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ [४]

ठीक कहते हो अर्जुन ! मनको वशमे करना कठिन है । पर अभ्यास और वैराग्यसे उसे काबूमे किया जा सकता है ।

१, २, ३, ४ गीता ३।३६, ३।३७, ६।३४, ६।३५

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥[1]

भगवान् कहते है कि यदि अत्यन्त पापी भी अनन्य भावसे मेरी भक्ति करे, तो उसे साधु ही मानना चाहिए, क्योकि वह पक्के निश्चयवाला है ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥[2]

हे अर्जुन, पापीसे पापी लोग, स्त्री, वैश्य, शूद्र भी मेरी शरण ले, तो उन्हे उत्तम गति मिलेगी ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥[3]

जो भी आदमी भक्तिसे मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल अर्पण

करता है, उसे मैं बडे प्रेमसे ग्रहण करता हूँ ।

---

१ गीता ९।३० । २ वही ९।३२ । ३ वही ९।२६

: ३ :
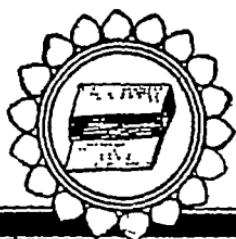
पुराणोमे कहानियाँ है बहुत पुरानी-पुरानी । सर्वसाधारण-को धर्मका ज्ञान करानेके लिए व्यास भगवान्ने ये कहानियाँ रची है । एक-से-एक रोचक, एक-से-एक हितकर । 'हित मनो-हारि' काव्य है यह ।

एक-एक कहानीमे रस भरा पडा है, ज्ञान भरा पडा है । जो पढता है, उसमे डूब जाता है । भगवान्के विभिन्न रूपो, अवतारो और लीलाओका बहुत ही रोचक वर्णन है पुराणोमे ।

और पुराणोका सार ?

सार एक ही है दूसरो का उपकार करो, किसी भी जीवको सताओ मत :

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

भगवान कैसे प्रसन्न होते हैं ?

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥[1]

ससारको पालनेवाले, गौ और ब्राह्मणोके रक्षक गोविन्द श्रीकृष्णको हम बार-बार प्रणाम करते है ।

अहिसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः ।
तृतीयक भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च ॥
शमस्तु पञ्चमं पुष्पं दमः षष्ठं च सप्तमम् ।
ध्यानं सत्यं चाष्टमं च ह्येतैस्तुष्यति केशवः ॥[2]

इन आठ पुष्पोको चढानेसे भगवान् प्रसन्न होते है १. अहिसा, २. इन्द्रियोका सयम, ३ सभी जीवोपर दया, ४. क्षमा, ५. शम, ६. दम, ७. ध्यान और ८ सत्य ।

अहिसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यमकल्कता ।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये ॥[3]

अहिसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और विना कपटका जीवन—इन मानसिक व्रतोका पालन करनेसे भगवान् प्रसन्न होते है ।

सत्यं शौचमहिसा च क्षान्तिर्दान दया दम· ।
अस्तेयमिन्द्रियाकोचः सर्वेषा धर्मसाधनम् ॥[4]

---

१ विष्णुपुराण १।१९।६५ । २ पद्म०, पाताल ८४।५६-५७ । ३ वही ८४।४२ । ४ स्कन्दपुराण, का० पू० ४०।८६

सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, दान, दया, दम, अस्तेय और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर अपने भीतर स्थापित करना, ये नौ सबके लिए धर्मके साधन हैं।

सत्य बोलो, मीठा बोलो : २ :

सत्यपूतां वदेद् वाणी मनःपूतं समाचरेत् ।[1]

सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोलनी चाहिए। मनसे जो पवित्र जान पडे, उसीका आचरण करना चाहिए।

सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ।
सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥[2]

सत्यसे ही सूर्य तप रहा है। सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सबसे बडा धर्म है। सत्यपर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। तराजूके एक पलडे पर हजार अश्वमेध यज्ञोंको रखे और दूसरेपर सत्यको, तो सत्यका ही पलडा भारी रहेगा।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते ॥[3]

---

१ पद्मपुराण, स्वर्ग० ५९।१९। २ मार्क० ८।४१-४२। ३ स्कन्द-पु०, ब्रा० ध० मा० ६।८८

सत्य बोले, मीठा बोले। ऐसा सत्य न बोले, जो कड़ुवा हो। ऐसा मीठा भी न बोले, जो असत्य हो, झूठ हो। वेद-शास्त्रमे यही धर्म बताया गया है।

> सत्येन तपसा ज्ञानध्यानेनाध्ययनेन वा।
> ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ [1]

सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान और स्वाध्यायके द्वारा जो लोग धर्मका पालन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं।

भगवान् कहाँ रहते हैं ? : ३ :

नरोत्तम माता-पिताकी सेवा छोड़कर तीर्थयात्राको निकल

पडा। तीर्थ-सेवनके प्रतापसे उसके कपडे खुले आकाशमे बिना सहारेके सूखने लगे।

---

१ पद्म०, भूमि० ९६।२१

नरोत्तमको बडा अहकार हो गया।

एक दिन एक बगुलेने उसके सिरपर बीट कर दी। उसने

नाराज होकर उसे शाप दे दिया। बेचारा जलकर भस्म हो गया।

यह तो हुआ, पर अव आकाशमे उसके कपडोका उडना और सूखना वन्द हो गया।

नरोत्तम इस घटनासे बहुत उदास हो गया। तव आकाश-वाणी हुई "हे व्राह्मण! तुम परम धार्मिक मूक चाण्डालके पास जाओ। उससे तुम्हे पता चल जायगा कि धर्म क्या है।"

नरोत्तम खोजते-खोजते मूक चाण्डालके घर पहुँचा। वह अपने माता-पिताकी सेवामे लगा था। वोला "आप वाहर ठहरे। मै आपका आतिथ्य करना चाहता हूँ।"

रुकने की बात सुनकर नरोत्तमको अपना अपमान-सा लगा । उसने त्यौरियाँ चढायी, तो मूकने कहा · "ब्राह्मण देवता! आप नाराज क्यो होते है ? मै बगुला नही, जो आप भस्म कर देगे । मुझसे पूछना है, तो कुछ देर ठहरना पडेगा । जल्दी हो, तो चले जाइये शुभा पतिव्रताके घर । वह आपको धर्मका रहस्य बता देगी ।"

मूक चाण्डालके घरसे एक दूसरे ब्राह्मण देवता निकले । वे नरोत्तमसे बोले "चलो, मै तुम्हे पहुँचा देता हूँ उस पतिव्रताके घर ।"

नरोत्तमने पूछा "पतिव्रता कैसी होती है ?"

वह बोला :

कार्ये दासी रतौ रम्भा भोजने जननीसमा ।
विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता ॥
भर्तुराज्ञां न लङ्घेद् या मनोवाक्कायकर्मभिः ।
भुङ्क्ते पतौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिव्रता ॥ [1]

---

१ पद्मपुराण, सृष्टि० ४७।५६-५७

'जो दासीकी तरह मन लगाकर घरका काम करती है, माँकी तरह प्रेमपूर्वक पतिको भोजन कराती है, विहारमें रम्भा-की तरह सुख देती है, विपत्तिमे मन्त्रीकी तरह हितकर सलाह देती है, ऐसी स्त्रीका नाम है—पतिव्रता।

'मनसे, वचनसे, कर्मसे जो पतिकी आज्ञाका कभी उल्लघन नही करती और पतिके भोजन कर लेनेके बाद ही भोजन करती है, उसका नाम है—पतिव्रता।'

नरोत्तम जब शुभा पतिव्रताके घर पहुँचा, तो वह पतिसेवामे
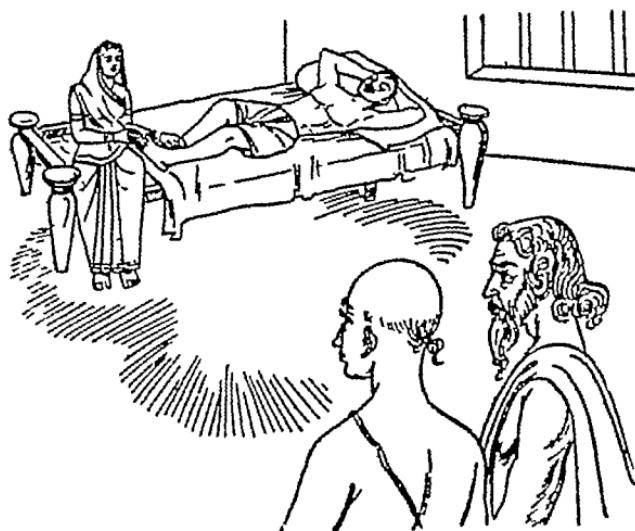
लगी थी। उसे भी फुरसत नही थी। उसने कहा . "पतिकी सेवासे खाली होनेपर ही मै आपकी शकाओका समाधान कर सकूँगी।"

नरोत्तमको वुरा लगा । उसे नाराज होते देख शुभाने कहा "महाराज, मै बगुला नही हूँ । आपको जल्दी है, तो जाइये तुलाधार वैश्यके पास ।"

नरोत्तम वहाँ पहुँचा । उसे भी फुर्सत नही थी । बोला
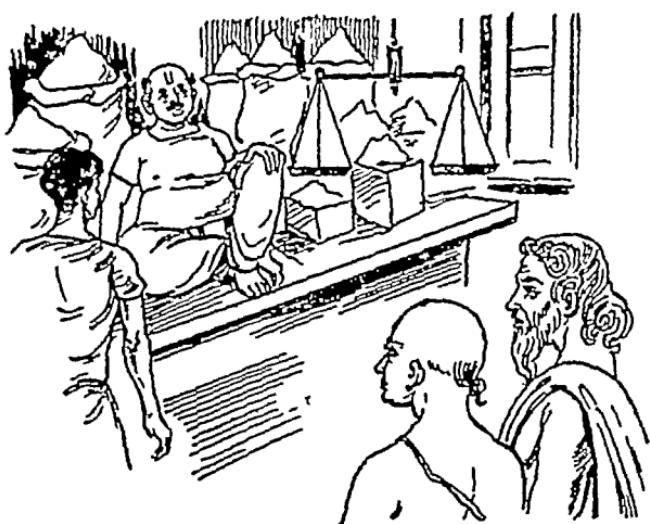
"पहर राततक मुझे फुर्सत नही । आप न रुक सके, तो चले जाइये अद्रोहकके पास । वह आपको बता सकेगा कि बगुलेके मरने का और आकाशमे आपके कपड़ोके न सूखनेका रहस्य क्या है ।"

पहलेवाला ब्राह्मण नरोत्तमके साथ था । उससे नरोत्तमने पूछा "इस मैले-कुचैले वैश्यको कैसे मालूम हो गयी वे सब बाते, जो इसकी पीठ-पीछे हुई है ?"

ब्राह्मण बोला · इसने सत्य और समतासे तीन लोक जीत लिये है । इसलिए भूत, भविष्य, वर्तमान सबका इसे पता है ।

सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्थैर्यमलोभता ।
अनाश्चर्यमनालस्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः ॥
वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः ॥[1]

'जिस आदमीमें सत्य, शम, दम, धैर्य, स्थिरता, अनालस्य, अनाश्चर्य, निर्लोभ और समता जैसे गुण है, उसमे सारा विश्व ही प्रतिष्ठित है। ऐसा पुरुष करोडों कुलोका उद्धार कर लेता है। उसके शरीरमे साक्षात् भगवान् विराजमान है। वह देवलोककी सारी बातोको जानता है, नरलोककी भी।'

नरोत्तम . "पर यह अद्रोहक कौन है ?"

१ पद्मपुराण, सृष्टि० ४७।९७-९९

ब्राह्मण बोला "अद्रोहक बडा ही जितेन्द्रिय है। एक राजकुमार अपनी युवती स्त्रीको ६ मासतकके लिए उसके पास छोड गया। लोगोने उसकी निन्दा की, तो वह जलती आगमे घुस गया, पर अग्निने न उसका शरीर जलाया, न उसके कपडे।"

अद्रोहकने नरोत्तमसे कहा "आपको धर्मका रहस्य जानना है, तो वैष्णवके पास चले जाइये।"

नरोत्तम वहाँ पहुँचा तो वैष्णव बोला : "भीतर चलकर भगवान्के दर्शन करिये।"

वह भीतर गया तो देखा कि वहाँ मन्दिरमे विष्णुके रूपमे वही ब्राह्मण देवता विराजमान है, जो चाण्डाल, पतिव्रता, आदिके घरमे थे और लगातार उसे रास्ता दिखाते आये है।

उन्होने नरोत्तमकी शकाओका समाधान कर दिया। उन्होने बताया कि जो आदमी माता-पिताकी सेवा करता है, जो स्त्री एकान्त मनसे पतिकी सेवा करती है, जो पुरुष सच बोलता है, ईमानदारी बरतता है, अपनी इन्द्रियोको काबूमे रखता है, उसीके यहाँ भगवान् निवास करते है।

उन्होने नरोत्तमसे कहा "तुम घर लौट जाओ और माता-पिताकी मन लगाकर सेवा करो। तुम्हारा कल्याण होगा।"

वैष्णव वह है

प्रशान्तचित्ताः सर्वेषां सौम्याः कामजितेन्द्रियाः ।
कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहमनिच्छवः ।
दयार्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः ।
गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदान्विताः ॥
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः ।
पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः ।
दीनानुकम्पिनो नित्यं भृशं परहितैषिणः ॥
गुणगणसुमुखाः परस्य मर्म-
च्छदनपराः परिणाम सौख्यदा हि ।
भगवति सततं प्रदत्तचिताः
प्रियवचनाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥[1]

वैष्णव वह है

जिसका चित्त बिलकुल शान्त है।
जो सबके प्रति कोमल भाव रखता है।
जिसने इन्द्रियोको जीत लिया है।
जो मन, वचन, कर्मसे किसीसे बैर नही करता।
जिसका मन दयासे द्रवित हो जाता है।
जो चोरी और हिंसासे सदा दूर रहता है।
जो सद्गुणोका पक्षपाती है, दूसरोके काममे लगा रहता है।
सदाचार से जिसका जीवन पवित्र है।

---

१. स्कन्द, वै० पु० मा० १०।९६-९८, १०८

दूसरेके उत्सवको अपना उत्सव मानता है।

सब प्राणियोमे भगवान्‌के दर्शन करते हुए किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नही करता।

गरीबोपर दया करना जिसका स्वभाव बन गया है।

दूसरोका भला करनेकी ही सदा इच्छा रखता है।

पराये गुणोसे प्रसन्न होता है, पराये दोष ढाँकना चाहता है।

अपना मन सदा भगवान्‌मे लगाये रहता है और मीठी बोली बोलता है।

०

दुखियोंका दुःख दूर करूँ मैं ! :५:

दुःखितानीह भूतानि यो न भूतैः पृथग्विधैः ।
केवलात्मसुखेच्छातोऽवेन्नृशंसतरोऽस्ति कः ॥[1]

जो आदमी अपने सुखकी इच्छा रखता है, पर दु:खमे पडे प्राणियोकी ओर ध्यान नही देता, उससे बढकर कठोर हृदय-वाला ससारमे और कौन है?

ज्ञानिनो हि यथा स्वार्थमाश्रित्य ध्यानमाश्रिताः ।
दुःखार्तानीह भूतानि प्रयान्ति शरणं कुतः ॥[2]

ज्ञानी लोग भी यदि अपने स्वार्थमे डूबकर ध्यानमे लगे रहेगे, तो इस जगत्‌के दुखी प्राणी किसकी शरण लेगे?

१, २ स्कन्द रेवाख० १३।३३—४१

को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मनाम् ।
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखभुक् ॥[१]

मेरे लिए वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दुःखी चित्त-वाले सभी जीवोंके भीतर घुसकर अकेला ही सबके दुःखोंको भोगता रहूँ ?

दृष्ट्वा तान् कृपणान् व्यङ्गाननङ्गान् रोगिणस्तथा ।
दया न जायते यस्य स रक्ष इति मे मतिः ॥[२]

इन गरीब, लूले-लंगडों, अंगहीनों और रोगी प्राणियोंको

देखकर जिसके हृदयमें दया नहीं पैदा होती, वह मनुष्य नहीं, राक्षस है ।

यन्मया सुकृतं किञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः ।
कृतं तेनापि दुःखार्ताः सर्वे यान्तु शुभां गतिम् ॥[३]

मैंने मन, वाणी, शरीर और कर्मसे यदि कुछ पुण्यका काम किया हो, तो उससे सभी दुःखी प्राणी शुभगतिको प्राप्त हों ।

१, २, ३. स्कन्दपुराण, रेवा०, अध्याय १३

मनसे बन्धन : मनसे मोक्ष : ६ :

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥

मनुष्योके बन्धनका और मोक्षका कारण है, मन। उसके लिए न देह दोषी है, न जीवात्मा और न इन्द्रियाँ।

मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारण द्विज ।
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम् ॥

जनक शुकदेवसे कहते है कि हे द्विज, सुख-दु खका वहुत बडा कारण है, मन। उसके निर्मल होनेसे सब निर्मल हो जाते है।

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः ।
निर्मल न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥[1]

सब तीर्थोमे घूम-घूमकर पुन पुन स्नान कर लेनेसे क्या! जवतक मन निर्मल नही होता, तबतक सब व्यर्थ है।

---

१ देवी भागवत १।१५

जैसा चिन्तन, वैसा फल

दो भाई थे। बडेका नाम था सुवृत्त, छोटेका वृत्त। दोनो पढे-लिखे विद्वान् थे।

जन्माष्टमीके दिन दोनो प्रयाग पहुँचे।

बेनीमाधवके मन्दिर का उत्सव देखने निकले थे कि जोरकी वर्षा आ गयी।

दोनो रास्ता भूल गये।

सुवृत्त भटककर एक वेश्याके कोठेपर पहुँच गया। उसने चाहा कि वृत्त भी उसके साथ वही रुक जाय, पर वह नही रुका।

वृत्त भटकते-भटकते माधवजीके मन्दिर मे जा पहुँचा।

सुवृत्त वेश्याके कोठेपर था, वृत्त माधवजीके मन्दिरमे। पर दोनोका मन ठिकानेपर नही था।

सुवृत्त सोच रहा था——धन्य है वृत्त, जो आज जन्माष्टमी-के अवसरपर माधवजीके दर्शन कर रहा है। मै अभागा पडा हूँ इस पापके निवासमे। छि छि !

वृत्त खडा था मन्दिरमे। उसकी आँखोके आगे पूजा, आरती, कथा-कीर्तन हो रहा था। पर उसे वह सब दीखता ही नही था। वह सोच रहा था——कहाँ आ फँसा मै! अच्छा होता, मै भी भैया के साथ वही कोठेपर रहकर जीवनका आनन्द लूटता !

सवेरे दोनो अपनी-अपनी जगहसे निकले और एक दूसरेको खोजने चल पडे। जब दोनो एक दूसरेके पास पहुँचे, तभी ऊपरसे बिजली गिरी और दोनो भाई एक साथ समाप्त हो गये।

यमराजके तीन दूत वहाँ आ गये और विष्णुके दो दूत। यम-

दूतोने वृत्तको पकडा। विष्णुदूतोने सुवृत्तको अपने साथ लिया।

सुवृत्त बोला "यह क्या कर रहे है आप लोग ? मै तो रातभर वेश्याके कोठेपर था, मुझे नरकमे ले जाना चाहिए था। वृत्त रातभर भगवान्‌के मन्दिरमे था, उसे स्वर्गमे ले जाना चाहिए था। आप उल्टा कर रहे है। यह तो सरासर अन्याय है।"

विष्णुदूत हँसकर बोले . "हम लोग अन्याय नही करते। धर्मका रहस्य बहुत गूढ है। धर्मके जितने भी काम किये जाते है, वे सब इसीलिए कि मनुष्यका चित्त, उसका मन शुद्ध हो, पवित्र हो। आजकी तुम्हारी रात भले ही वेश्याके कोठेपर कटी है, पर इससे क्या ? मनसे तो तुम भगवान्‌का ही चिन्तन करते रहे। इसलिए तुम विष्णुलोक जानेके अधिकारी हो। तुम्हारा भाई वृत्त भले ही माधवजीके मन्दिर मे रातभर रहा, पर उसका मन कहाँ था ? वह तो रातभर वेश्याका ही चिन्तन करता रहा। सोचता रहा—'भैया, कैसा आनन्द लूट रहे होगे, मै उससे वचित रह गया।' तो जहाँ मन, वही हम। जो जैसा चिन्तन करेगा, वैसा ही उसे फल मिलेगा।" [१]

---

१ वायुपुराण अ० २१

स्वर्ग में कौन जाते हैं, नरकमें कौन ? : ८ :

ये याचिताः प्रहृष्यन्ति प्रियं दत्त्वा वदन्ति च ।
त्यक्तदानफला ये तु ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
द्विषतामपि ये द्वेषान्न वदन्त्यहितं कदा ।
कीर्तयन्ति गुणांश्चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
ये शान्ताः परदारेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
रमयन्ति न सत्त्वस्थास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥[1]

माँगनेसे जो प्रसन्न होते है, दान देकर प्रिय वचन बोलते है, जिन्होने दानका फल छोड दिया है, वे लोग स्वर्गमे जाते है ।

जो लोग अपनेसे वैर रखनेवालोके प्रति भी कभी अहितकारी वचन मुँहसे नही निकालते, बल्कि सबके गुणोका ही बखान करते है, वे स्वर्गमे जाते है ।

जो लोग मनसे, वचनसे और कर्मसे परायी स्त्रियोको नही ताकते, वे स्वर्गमे जाते है ।

दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमित्वं यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम् ।
इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ॥[2]

जो आदमी दरिद्र है उनका दान करना, जो सामर्थ्यवाले है उनका क्षमा करना, जो जवान है उनका तपस्या करना, जो ज्ञानी है उनका मौन रखना, जो सुख भोगनेके योग्य है, उनका सुखकी इच्छाका त्याग करना और सभी प्राणियोपर दया करना—ये ही है वे सद्‌गुण, जो आदमीको स्वर्गमे ले जाते है ।

---

१ पद्मपुराण, पाताल० ९२।१७,१९,२० । २ वही ९२।५८

मोक्ष ज्ञानसे, संस्कारसे नहीं : ९ :

कहते है कि शुकदेवजी १२ वर्षतक माँके ही गर्भमे रहकर वेद और शास्त्रोका श्रवण और मनन करते रहे।

माँको पीडा होते देख उनके पिता व्यासजीने उनसे पूछा "तुम कौन हो ?"

शुकदेव बोले "चौरासी लाख योनियोमे भटक चुकनेके बाद क्या बताऊँ, मै कौन हूँ ?"

व्यास . "तुम बाहर क्यो नही आते ?"

शुकदेव "ससारमे भटकते-भटकते मुझे वैराग्य हो गया है। पर मै जानता हूँ कि गर्भसे बाहर निकलते ही माया मुझे छ लेगी और उसके छूते ही मेरा ज्ञान-वैराग्य हवा हो जायगा। इसलिए मै गर्भमे रहकर ही योगाभ्यास करना चाहता हूँ।"

व्यासजी घबडाये। बोले "तुम बाहर आ जाओ। तुम्हे माया न छू सकेगी।"

शुकदेव बाहर आये और तुरत वनको चलने लगे।

व्यासजी बोले "बेटा, कुछ तो ठहरो। मै तुम्हारा जात-कर्म सस्कार आदि तो कर दूँ।"

शुकदेवने कहा "इन्ही सस्कारोने तो मुझे ससारमे अटका रखा है। मुझे कोई जरूरत नही इनकी।"

व्यास "ऐसा भी कही होता है बेटा! तुम्हे विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमका पालन करना चाहिए। उसीके वाद मोक्ष मिल सकेगा।"

शुकदेव . "ब्रह्मचर्य से मोक्ष मिलता, तो हिजडोको कभीका मोक्ष मिल गया होता। गृहस्थ आश्रमसे मोक्ष मिलता, तो सभी गृहस्थ मुक्त हो जाते। वानप्रस्थ आश्रमसे मोक्ष मिलता, तो सभी मृगोको कबका मोक्ष मिल गया होता। सन्यास आश्रमसे मोक्ष मिलता, तो गरीबोको, दरिद्रोको सबसे पहले मोक्ष मिल जाता।"

व्यास "पुम् नामके नरकसे पुत्र ही बचाता है। पुत्र होनेसे ही स्वर्ग मिलता है।"

शुकदेव "पुत्र होनेसे ही स्वर्ग मिलता, तो कुत्तो, सुअरो और टिड्डियोको कभीका स्वर्ग मिल गया होता।"

व्यास "पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। पौत्रके दर्शनसे देवऋणसे। प्रपौत्रके दर्शनसे स्वर्ग मिलता है।"

शुकदेव "गीध वहुत दिन जीते है। न जाने कितनी पीढियाँ देखते है, पर उनमेसे कितनोको अबतक मोक्ष मिला है?"

इस तरह कहकर शुकदेव वनके लिए निकल पडे।[1]

---

१ स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, पूर्वार्व, १५० अ०

मुक्ति किसे मिलती है ? : १० :

सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम् ।
गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः ॥
विशुद्धबुद्धिः समलोष्ठकाञ्चनः
समस्तभूतेषु समः समाहितः ।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च
परं हि गत्वा न पुनः प्रजायते ॥[1]

हे राजन् ! जिसकी दृष्टिमें सत् और असत्से, गुण और अवगुणसे सना यह सारा जगत् आत्माका ही रूप बन गया है, उस योगीके लिए कौन प्यारा है, कौन कुप्यारा ?

जिसकी बुद्धि शुद्ध है, जो मिट्टीके ढेलेको और सोनेको एक समान मानता है, सब प्राणियोंके प्रति जिसका समभाव है, वह अविनाशी पदको पाकर जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिए छूट जाता है।

योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तित ।
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणम् ॥[2]

पैसेसे जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह जल्दी मिट जाता है। दूसरेके लिए जो धन खर्च किया जाता है, दूसरों की सेवा-सहायतामें जो धन लगाया जाता है, वही मुक्ति दिलाता है।

●

---

१ मार्कण्डेय० ४१।२३-२४ । २ पद्म०, सृष्टि० १९।२५३ ।

: ४ :
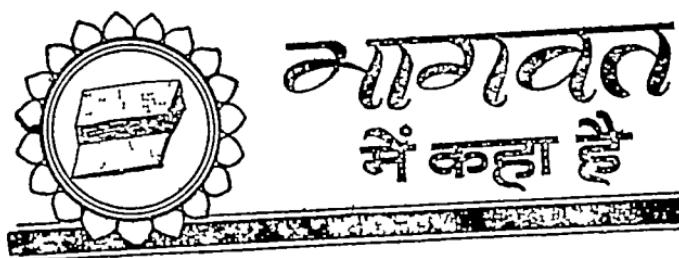
पुराणोमे श्रीमद्भागवत सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सबसे अधिक उसीका पाठ होता है। हिन्दुओके, वैष्णवोके गलेका हार है वह।

जगद्गुरु भगवान् कृष्णकी मनोहर लीलाओका भागवतमे अत्यन्त ही सुन्दर वर्णन है। भक्त उसे पढकर गद्गद हो उठते है। श्रद्धालु पाठक सुनते-सुनते रो पडते है। हृदयकी कालिमा धुलती है और मनुष्य सन्मार्गपर चलनेको आतुर हो उठता है।

भागवत आदिसे अन्ततक भगवत्प्रेमसे शराबोर है। धन्य हो उठता है मनुष्य, जो उसके रसकी एक छोटी-सी भी बूंद पी लेता है।

पिबत भागवतं रसमालयम् !

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥[1]

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुत् दिव्य स्तोत्रोके द्वारा जिसकी स्तुति करते है, साम-सगीत जाननेवाले ऋषि-मुनि अग, पद और क्रम-सहित वेद-उपनिषदो द्वारा जिसका गान करते है, योगी लोग ध्यानमग्न मनद्वारा जिसका दर्शन करते है और देवता, राक्षस और मनुष्य जिसका पार नही पाते, उस परमात्मदेवको हम प्रणाम करते है ।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल ! भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ॥[2]

शरणागतोके रक्षक हे प्रभो, हम आपके चरणारविन्दोकी वन्दना करते है । आपके चरण सदा ध्यान करने योग्य है । वे ससारकी पराजयोको मिटानेवाले है । भक्तोकी मनोकामना पूरी करनेवाले है । तीर्थोके तीर्थ है । शिव, ब्रह्मा आदि उन्हे नमस्कार करते है । सेवकोके रक्षक है और ससार-सागरसे पार जानेके लिए जहाज है ।

---

१ भागवत १२।१३।१ । २ वही ११।५।३३

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥[1]

सत्य जिनका व्रत है, जो सत्यपरायण है, तीनो कालमे सत्य है, सत्यस्वरूप है, ससारका उद्भव जिनसे होता है, अत-र्यामी रूपसे जो सत्यमे निहित है, सत्य और ऋत जिनके नेत्र है, उन सत्यके सत्यस्वरूप प्रभो, हम आपकी शरण है।

धर्मके लक्षण : २ :

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥[2]

सबके लिए साधारण धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीर से किसीको सताये नही, किसीकी हिसा न करे। सत्यपर दृढ रहे। चोरी न करे। काम, क्रोध और लोभसे बचे। वही काम करे, जिससे सभी प्राणियोको प्रसन्नता हो और सबका भला हो।

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥

१ भागवत १०।२।२६। २. वही ११।१७।२१

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥[1]

हे युधिष्ठिर ! धर्मके ये तीस लक्षण बताये गये है .

सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, मनका सयम, इन्द्रियोका सयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सतोष, सबको एक दृष्टिसे देखना, सेवा, धीरे-धीरे ससारके भोगोसे छुटकारा, यह विचार कि मनुष्यके अभिमानभरे कामोका फल उलटा ही होता है, मौन, आत्माका चिन्तन, प्राणियोको अन्न आदि बाँटकर खिलाना, सब प्राणियो और मनुष्योमे अपनी जैसी आत्मा और इष्ट देवताका भाव, भगवान्के नामोका, गुणोका, लीलाका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी पूजा, नमस्कार, भगवान्की सेवा, उनके साथ सखाभाव और उनके चरणोमे आत्मसमर्पण । यह सभी मनुष्योका धर्म है । इसका पालन करनेसे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते है ।

---

१. भागवत ७।११।८—१२

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत् ॥[1]

न तो ये मनुष्य मेरे सुख-दुःखके कारण है और न देवता, न शरीर है और न ग्रह, न कर्म, काल आदि ही । मन ही इसका मूल कारण है । मन ही सारे ससार-चक्रको चला रहा है ।

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥[2]

दान, अपने धर्मका पालन, यम, नियम, वेदका अध्ययन, सत्कर्म, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय, मन भगवान्मे लग जाय । मनका समाहित हो जाना ही समाधि है ।

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेवः ॥[3]

सारी इन्द्रियाँ मनके वशमे है । मन किसी इन्द्रियके वशमे नही है । यह मन बलवान्से भी बलवान् है । बड़ा भयकर देव है । इसे जो वशमे कर लेता है, वही देव-देव है । वह इन्द्रियोको जीतनेवाला है ।

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ।
कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः ॥[4]

---

१ भागवत ११।२३।४३ । २. वही ११।२६।४६ । ३. वही ११।२३।४८ । ४ वही ११।२३।४९

मन बहुत बडा शत्रु है। बड़े वेगसे हमला करता है। मर्मस्थलपर चोट करता है। इसे जीतना कठिन है। मनुष्यको चाहिए कि इसी शत्रुपर विजय प्राप्त करे। पर मूर्ख लोग इसे जीतनेका प्रयत्न ही नही करते। व्यर्थ ही दूसरे लोगोसे झगडा-बखेडा करके किसीको मित्र बना लेते है, किसीको शत्रु, किसीको उदासीन ।

उत्तम भागवतके लक्षण :४:

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥[1]

भगवान्का प्रेमी उत्तम भागवत वह है, जो सब प्राणियोमे भगवान्के दर्शन करता है और जिसे प्राणी भगवान्के ही रूप जान पड़ते हैं ।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥[2]

धन-सम्पत्तिमे या शरीर आदिमे जो अपने-परायेका भेद-भाव नही रखता, सब प्राणी-पदार्थोमे परमात्माको विराजमान देखता है, समभाव रखता है और किसी भी घटनासे या सकल्पसे क्षुब्ध नही होता, वह उत्तम भागवत है।

---

१. भागवत ११।२।४५। २ वही ११।२।५२

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥[1]

जिसके पास कुछ सग्रह नही है, जो अकिंचन है, जिसने इन्द्रियोपर विजय पा ली है, जो शान्त है, समदर्शी है, भगवान्‌की समीपताका जो सदा अनुभव करके सतुष्ट रहता है, उसके लिए आकाशका कोना-कोना आनन्द से भरा है ।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥[2]

भगवान् कहते है कि जिसे किसीकी अपेक्षा नही, जो शान्त-है, किसीसे जिसका वैर नही है, जो समदर्शी है, उस महात्माके पीछे-पीछे मै यह सोचकर घूमता रहता हूँ कि कही उसके चरणोकी धूल उडकर मुझपर पड जाय और मै पवित्र हो जाऊँ !

जित देखों तित श्याममयी है ! : ५ :

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥[3]

गोपियोसे भगवान् कहते है कि जैसे घट, पट आदि सभी पदार्थोके आदि, अन्त और मध्यमे, बाहर और भीतर, उनके मूलकारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ही ओत-प्रोत

---

१ भागवत ११।१४।१३ । २. वही ११।१४।१६ । ३. वही १०।८२।४६

है, वैसे ही सब प्राणियोके आगे, पीछे, बीचमे, बाहर, भीतर केवल मै ही मै हूँ ।

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्‌भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥[१]

मुझे पानेके जितने भी साधन है, उनमे मै तो सबसे अच्छा साधन यही मानता हूँ कि जितने भी प्राणी है, जितने भी पदार्थ है, सबमे मनसा, वाचा, कर्मणा मेरी ही भावना की जाय ।

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम ।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥[२]

शुद्ध हृदयवाला पुरुष मुझे ही सभी प्राणियोके भीतर-बाहर और हृदयमे बैठा हुआ देखे, जिस तरह आकाश सबके भीतर और बाहर छाया हुआ है।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥[३]

आकाश और वायु, अग्नि और जल, पृथ्वी और नक्षत्र, प्राणी और दिशाएँ, पेड और पौधे, नदी और समुद्र—सबके सब भगवान्‌के ही शरीर है। सभी रूपोमे भगवान् ही विराजमान है। भक्त ऐसा मानकर अनन्य भावसे सबको प्रणाम करे ।

---

१ भागवत ११।२९।१९ । २ वही ११।२९।१२ ।
३. वही ११।२।४१

दत्तात्रेयके चौबीस गुरु : ६ :

एकबार यदु नामके राजाने एक अवधूतको मस्तीसे विचरते देखकर पूछा .

> जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ।
> न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः ॥[1]

"ससारमे सभी लोग काम और लोभकी आगसे जल रहे है । पर आपको देखकर लगता है कि आपतक उनकी आँच भी नही पहुँच पाती । ऐसा लगता है कि वनमे आग लगी होनेपर कोई हाथी गगाके जलके भीतर जा पड़ा हो । ऐसा क्यो ?"

अवधूत थे दत्तात्रेय महाराज । बोले . मैने बहुतसे गुरु किये है । उनसे सीख लेकर मै इस तरह मुक्त होकर विचरता हूँ । मेरे गुरु है :

> पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
> कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद् गजः ॥
> मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ।
> कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥[2]

पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतग, मधुमक्खी, हाथी, शहद ले जानेवाला, हरिण, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, साँप, मकडी और भृङ्गीकीड़ा ।

---

१. भागवत ११।७।२९ २ वही ११।७।३३-३४

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।
तद् विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥[१]

१. पृथिवीसे मैंने धीरज रखनेकी, क्षमा करनेकी सीख ली। लोग उसपर कितना उत्पात नही करते ? कोई नीव खोदता है, कोई कुँआ। कोई उसपर फावडा चलाता है, कोई कुदाली। पृथिवी न तो किसीसे बदला लेती है, न रोती-चिल्लाती है। उसी तरह बुद्धिमान् आदमीको कभी अपना धीरज नही खोना चाहिए, भले ही दूसरे लोग हमला करते रहे।

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसम्भवः ।
साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥[२]

पृथ्वीके ही विकार है पेड और पहाड़। उनका जन्म दूसरोका उपकार करनेके लिए ही हुआ है। साधुको उनसे परोपकार करनेकी सीख लेनी चाहिए।

२. वायुसे मैंने यह सीख ली कि काम भरके लिए ही विषयोका उपभोग करे। जैसे प्राणवायुको जरूरत भर ही भोजन चाहिए। बाहरी हवासे यह सीखा कि वह अच्छी-बुरी सभी जगह जाती है, पर सदा शुद्ध रहती है। हम भी किसी गुण-दोषमे लिपटे नही।

३. आकाशसे सीखा कि चाहे जो हो, सदा अछूता रहे। पानी बरसे, आग लगे, अन्न पैदा हो, नष्ट हो, बादल आये, चले जायँ—किसीसे कोई लगाव नही। चाहे जो काल हो, चाहे जो पैदा हो, चाहे जो मरे, आत्मा सबसे अछूती है।

---

१ भागवत ११।७।३७। २. वही ११।७।३८

तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ।
न स्पृश्यते नभस्तद्वत् कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥[१]

४. पानीसे सीखा कि वह जैसा स्वच्छ, चिकना, मधुर और पवित्र करनेवाला होता है, वैसे ही हम भी बने ।

५. आगसे सीखा कि सब कुछ पचा लेना चाहिए और किसी चीजका सग्रह नही करना चाहिए ।

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ।
प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥[२]

अग्नि टेढी, सीधी-लम्बी-चौड़ी लकड़ियोमे लगी होनेपर वैसी ही जान पड़ती है, पर वैसी है नही, उसी तरह सबमे व्यापक आत्मा नाना रूपोमे दिखायी देती है, पर भीतर एक है ।

६. चन्द्रमासे सीख ली कि कलाओके घटने-बढ़ने पर भी वह जैसे एक ही रहता है, घटता-बढ़ता नही, वही हाल आत्मा-का है। जन्मसे मृत्युतक शरीर घटता-बढ़ता है, पर आत्मापर उसका कोई असर नही होता ।

७. सूर्यसे यह सीख ली कि किसीमे आसक्त न हो। जो ले, सो पानीकी तरह बरसा दे । भिन्न-भिन्न पात्रोमे सूर्य भिन्न-भिन्न दिखायी देता है, पर है वह एक ही । वही हाल आत्माका है।

८. कबूतरसे यह सीख ली कि किसीसे अधिक स्नेह नही करना चाहिए । नही तो वडा कष्ट भोगना पडता है ।

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ।
कुर्वन्विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥[३]

---

१ भागवत ११।७।४३। २ वही ११।७।४७। ३ वही ११।७।५२

कबूतरोंका एक जोडा था। कई बच्चे थे। एक दिन माँ-बाप बाहर थे, तभी बहेलियोने बच्चोको जालमे फाँस लिया। लौटकर माँने देखा, तो वह भी दुखी होकर बच्चोके साथ जालमें जा गिरी। बादमे कबूतर भी। बहेलिया सबको बाँधकर ले गया।
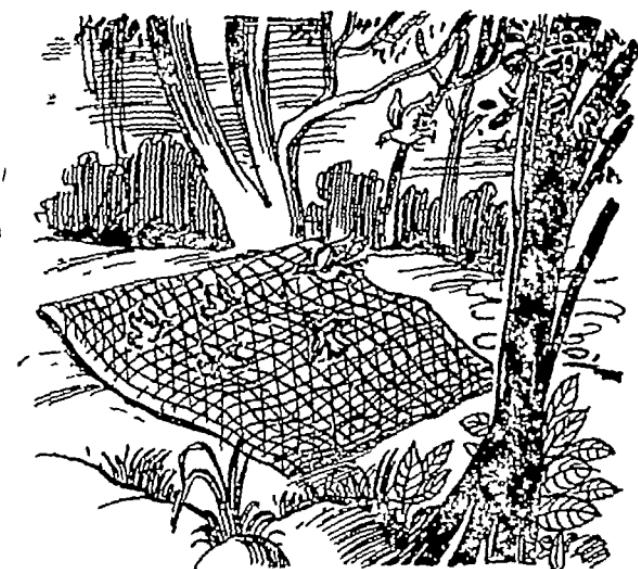
९. 'अजगर से सीख ली कि मीठा-फीका, थोडा-वहुत जो मिले, उसीमे सतोष माने :

> ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ।
> यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥[1]

१० समुद्रसे यह सीख ली कि सदा प्रसन्न रहे, गम्भीर रहे; फिर चाहे ज्वार आये, चाहे भाटा।

---

१. भागवत ११।८।२

११ पतगसे सीख ली कि रूपके मोहमे पड़कर आगमे न कूदे ।

१२. भौरेसे सीख ली कि सार जहाँ मिले, ले ले ।

१३. हाथीसे सीख ली कि काठकी बनी हुई स्त्रीको भी न छुए ।

१४ मधुका छत्ता तोडनेवालेसे सीख ली कि किसी चीजका सग्रह करके न रखे । 'खाय न खरचे सूम धन, चोर सबै लै जाय !'

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद् दुःखसञ्चितम् ।
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधुः ॥[1]

१५. हरिनसे यह सीख ली कि सगीतके, नाच-गानेके फेरमे कभी न फँसे ।

१६. मछलीसे यह सीख ली कि जीभके स्वादमे कभी न
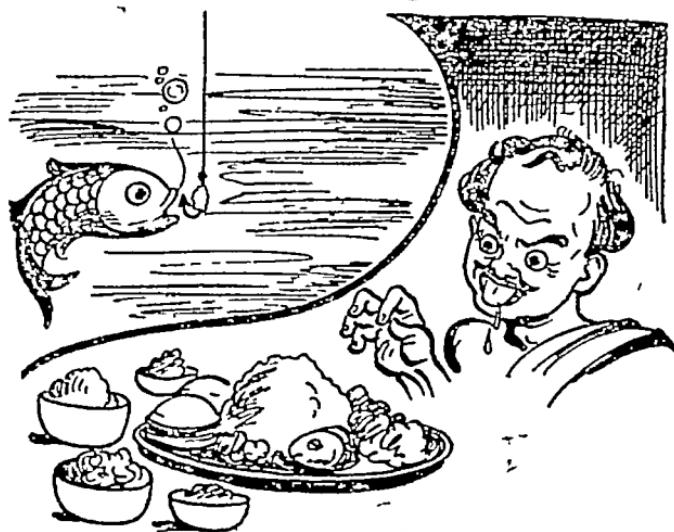
पडे । मछली काँटेमे लगे माँसके टुकडेके फेरमे फँसकर प्राण गँवा देती है, वही हाल स्वादके लोभी पुरुषोका होता है :

1 भागवत ११।८।१५

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥[1]

जीभको जीतना जरूरी है। जिसने जीभको जीत लिया, उसने सारी इन्द्रियाँ जीत ली :

तावत् जितेन्द्रियो न स्यात् विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद् रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे ॥[2]

१७. पिंगला नामकी वेश्यासे यह सीख ली कि आशा और सो भी धनकी आशा बडा दुख देती है। पिगला जबतक पुरुषसे धनकी आशा लगाये रही, तबतक बहुत दु ख भोगती रही। बाद मे जब उसने धनकी आशा छोड़ दी, तो सुखसे सोयी :

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥[3]

१८. कुरर पक्षीसे सीख ली कि किसी चीजका सग्रह नही

१. भागवत ११।८।१९। २ वही ११।८।२१। ३. वही ११।८।४४

करना चाहिए। उससे भारी दु:ख भोगना पड़ता है। जो अकिंचन है, वह बहुत सुखी रहता है :

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः॥[1]

कुरर पक्षी कहींसे माँसका एक टुकड़ा पा गया था। वह उसे अपनी चोचमे दबाये लिये जा रहा था। दूसरे पक्षियो ने उसे देखा। वे उसे चोचोसे मारने लगे। लाचार उसने वह टुकड़ा फेक दिया। सारी झझट कट गयी।

१९. बालकसे यह सीख ली कि हमे सदा निश्चिन्त और आनन्दमे मगन रहना चाहिए।

२०. कुमारी कन्यासे यह सीख ली कि कई लोग साथ रहनेसे झगडा होता है, इसलिए अकेला ही विचरे। वह कुमारी धान कूट रही थी। चूडियाँ बजने लगी, पर बाहर मेहमान बैठे थे। यह देख कन्याने अपने हाथोकी चूडियाँ तोड दी। केवल एक-एक चूडी रखी, तब बिना आवाजके धान कुट गया।

२१. बाण बनानेवाला एक कारीगर बाण बना रहा था। उसके पाससे बाजे-गाजेके साथ एक बारात निकल गयी। उसे पता ही न चला। उससे मैंने सीखा कि आसन और प्राणायामसे,

---

१ भागवत ११।९।१

अभ्यास और वैराग्यसे मनको वशमे कर ले, फिर उसे एक लक्ष्यमे लगा दे ।

मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः ।
वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥[1]

२२. साँपसे यह सीख ली कि उसकी तरह अकेला विचरे, कही घर न बनाये ।

२३. मकडीसे यह सीख ली कि परमेश्वर भी उसीकी तरह जाला फैलाकर उसीमे विहार करते है, फिर उसे निगल जाते है।

२४. भृगीसे यह सीख ली कि एकाग्र होकर मनको लगा दे तो जिसमे मन लगा हो, खुद भी वैसा ही हो जाता है । फिर यह मन लगाना चाहे प्रेमसे हो, चाहे द्वेषसे, चाहे भयसे । मन लगाया कि काम बना :

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥[2]

---

२. भागवत ११।९।११ । २. वही ११।९।२२

यां दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥[1]

दु खोकी जड है विषयोकी तृष्णा । जिनकी बुद्धि ठीक नही, वे लोग बडी कठिनाईसे उसका त्याग कर सकते है । शरीर बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा नही बुढाती । अपना भला चाहनेवाल को तृष्णा छोड देनी चाहिए ।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥[2]

पृथिवीमे जितना भी अन्न है, सोना है, पशु है, स्त्रियाँ है—सबकी सव मिलकर उस आदमीको सतुष्ट नही कर सकती, जो कामनाओका शिकार है ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥[3]

विषयोके भोगनेसे भोगवासना कभी शान्त नही हो सकती । जिस तरह घी डालनेसे आग और भडक उठती है, उसी तरह भोगोसे भोगवासनाएँ और अधिक जोर पकडती है ।

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥[4]

---

१ भागवत ९।१९।१६ । २. वही ९।१९।१३ । ३. वही ९।१९।१४ । ४ वही ८।१९।२५

धनसे और भोगोसे सतोष न होनेके कारण ही आदमीको जन्म-मरणके चक्करमे पडना पडता है। जो मिल जाय, उसीमे प्रसन्न रहनेवाला मुक्ति पाता है।

अर्थका अनर्थ छोड़ो : ८ :

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥[1]

धन कमानेमे, कमाकर उसे बढानेमे, रखनेमे, खर्च करनेमे, उसके नाशमे, उसके उपभोगमे जहाँ देखो वहाँ परिश्रम है, भय है, चिन्ता है, भ्रम है।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्माद् अनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥[2]

चोरी, हिसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और शराब मनुष्योमें ये १५ अनर्थ धनके कारण ही माने गये है। जो आदमी अपना कल्याण चाहता है, वह स्वार्थ और परमार्थ का विरोध करनेवाले इस अनर्थको, जिसे 'अर्थ' (धन) की सज्ञा मिली है, दूरसे ही त्याग दे।

---

१ भागवत ११।२३।१७। २ वही ११।२३।१८-१९

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥[१]

देवताओ, ऋषियो, पितरो, प्राणियो, जाति-भाइयो, कुटुम्बियो और धनके दूसरे भागीदारोको उनका भाग देकर जो आदमी उन्हे संतुष्ट नही करता और खुद भी उसका उपभोग नही करता, वह यक्षके समान धनकी रखवाली करनेवाला कंजूस निश्चय ही अधम गतिको पाता है।

मुक्त पुरुष वह है : ९ :

यदा न कुरुते भाव सर्वभूतेष्वमङ्गलम्।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ [२]

जब मनुष्य किसी भी प्राणी, किसी भी वस्तुके प्रति राग या द्वेषका भाव नही रखता, तब वह समदर्शी हो जाता है। उसके लिए सब दिशाएँ सुखमयी बन जाती है।

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥[३]

हे ऊधव, मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसी प्राणीसे वैर नही रखता। घोर दु ख भी प्रसन्नतासे सहता है। सत्य ही उसके जीवनका सार है। उसके मनमे पाप नही आता। वह समदर्शी होता है। सबका उपकार करता है।

१ भागवत ११।२३।२४।
२ वही ९।१९।१५।
३ वही ११।११।२९

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ [१]

उसकी बुद्धि कामनाओसे कलुषित नही होती । वह सयमी होता है । मीठे स्वभाववाला होता है । पवित्र होता है । वह सग्रह नही करता । मिताहार करता है । शात रहता है । बुद्धि उसकी स्थिर रहती है । उसे केवल भगवान्का आसरा रहता है ।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ [२]

वह प्रमाद नही करता । गम्भीर स्वभाववाला होता है । धैर्य रखता है । भूख और प्यास, शोक और मोह, जन्म और मृत्युसे विचलित नही होता । वह दूसरोसे मान नही चाहता, पर दूसरोका मान करता है । समर्थ होता है । शरीर, मन, बुद्धिको सदा ठिकानेपर बनाये रखता है । सबसे मित्रता रखता है । सबपर दया करता है, करुणा बरसाता है । कवि होता है । उसे भगवान्के तत्त्वका पूरा ज्ञान होता है ।

मुक्तिके साधन : १० :

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥
शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥

---

१ भागवत ११।११।३० । २ वही ११।११।३१

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥[1]

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), असगता, लज्जा, सचय न करना, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय—ये १२ यम हैं । बाहरी और भीतरी शौच, जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथिसेवा, भगवान्‌की पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, सतोष, गुरुकी सेवा—ये १२ नियम है । जो इनका पालन करते है, उन्हे इच्छाके *अनुसार भोग भी मिलता है, मुक्ति भी ।*

शमो मन्निष्ठता बुद्धिर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दु.खसम्मर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥[2]

भगवान्‌मे बुद्धि लगनेका नाम है, शम । इन्द्रियोके सयम-का नाम है, दम । दु ख सहनेका नाम है, तितिक्षा । जीभपर और जननेन्द्रियपर विजय पानेका नाम है, धैर्य ।

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥[3]

किसीसे वैर न करनेका, सबको अभय देनेका नाम है, दान । कामनाओको त्याग करनेका नाम है, तप । अपनी वासनाओको जीतनेका नाम है, वीरता । सब जगह समान रूपसे विराजमान, सत्यस्वरूप परमात्माके दर्शन करनेका नाम है, सत्य । ●

---

१ भागवत ११।१९।३३-३५ । २ वही ११।१९।३६ ।
३ वही ११।१९।३७

: ५ :

गोस्वामी तुलसीदासकी रामायण !

भक्ति, ज्ञान और कर्मकी त्रिवेणी ।

जो कोई उसमे स्नान करता है, पवित्र हुए बिना नही रहता । वाल्मीकि-रामायण पीछे पड गयी, तुलसी-रामायण जन-जनके हृदयका हार बन बैठी ।

गाँव हो, देहात हो, शहर हो, कस्बा हो, जगल हो, पहाड हो—जहाँ खोजिये, तुलसी-रामायण मिल ही जायगी । हिन्दी बोलनेवाला शायद ही कोई बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष ऐसा निकले, जिसे रामायणकी कुछ चौपाइयाँ, कुछ दोहे कण्ठ न हो ।

'जनमन मजु मुकुर मल हरनी' रामायण भक्तिरससे ओत-प्रोत है । रामकथाके बहाने तुलसीदासने मानो भक्तिकी गगा ही बहा दी है । ठीक ही कहा है उन्होने .

जे एहि कथहि सनेह समेता ।
पढ़िहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ।।
हुइहहिं रामचरन अनुरागी ।
कलिमल रहित सुमगल भागी ।।

हृदयकी शुद्धि और भगवान्‌के चरणोकी प्रीति---इनके अलावा मनुष्यको और चाहिए ही क्या ?

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू : १ :

सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।
जासु सत्यता ते जड माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।।

रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ।।

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ।।
जौं सपने सिर काटै कोई । बिनु जागे न दूरि दुख होई ।।
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ।।[1]
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे।।[2]
जब जब होइ धरम कै हानी । बाढहि असुर अधम अभिमानी ।।
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

---

१ बालकाड ११६-१७ । २ बालकाड ११५

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥ [१]

जाके अस रथ होइ दृढ़ : २ :

सुनहु सखा कह कृपा निधाना । जेहि जय होइ सो स्यदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥
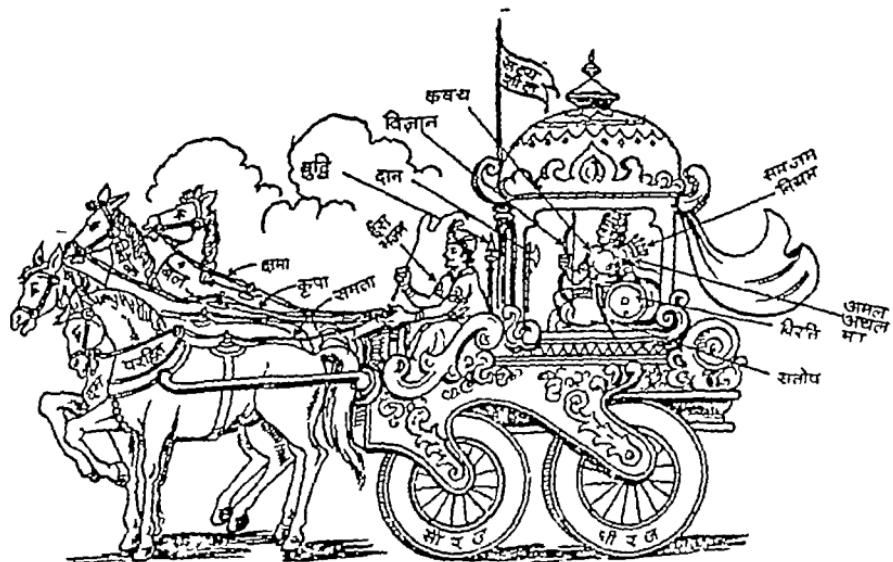
बल बिवेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना । विरति चर्म सतोप कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचडा । वर विग्यान कठिन कोदडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥

---

१. वालकाड १२०-२१

कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥[1]

राम बसहु तिन्हके मनमांही : २ :

वालमीकि हँसि कहहि बहोरी। वानी मधुर अमिय रस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरतर होहि न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहि दरस जलधर अभिलापे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप विन्दु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। वसहु वन्धु सिय सह रघुनायक ॥

जसु तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु ॥

प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुवासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करही। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरही ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहि दूजा ॥
चरन राम तीरथ चलि जाही। राम वसहु तिन्ह के मन माँही ॥

---

१ लकाकाड ७९-८०

मत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥

तरपन होम करहि बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह ते अधिक गुरहि जियँ जानी । सकल भायँ सेवहि सनमानी ॥

सबुकरि माँगहिं एक फलु, राम चरन रति होउ ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ ॥

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दभ नहि माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरिस प्रससा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाडि गति दूसरि नाही । राम बसहु तिन्ह के मनमाही ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धनु पराव विष ते विप भारी ॥

जे हरषहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ।।
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ।।

स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्ह कें सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ।।

अवगुन तजि सब के गुन गहही । बिप्र धेनु हित संकट सहही ।।
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ।।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ।।
जाति पाँति धनु धरमु बडाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहि के हृदयँ रहउ रघुराई ।।
सरगु नरकु अपवरगु समाना । जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ।।
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ।।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु ।।[1]

परहित सरिस धर्म नहिं भाई :४:

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।[2]
परहित सरिस धर्म नहि भाई । पर पीडा सम नहि अधमाई ।।[3]
परहित बस जिनके मनमाँही । तिन कँह जग दुर्लभ कछु नाही ।।[4]

---

१ अयोध्याकाड १२७-३१ । २ उत्तरकाड १२० । ३ उत्तरकाड४०
४ अरण्यकाड ३०

अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ।। [१]
सत विटप सरिता गिरि धरनी । पर हित हेतु सवन्हि कै करनी ।। [२]

कबहुँ कि दुख सबकर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ।। [३]

धर्म न दूसर सत्य समाना : ५ :

तन तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्यसध कहुँ तृन सम वरनी ।। [४]
नहिं असत्य सम पातक पुजा । गिरि सम होहि कि कोटिक गुजा ।।
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये । वेद पुरान विदित मनु गाये ।। [५]
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान वखाना ।। [६]

---

१. उत्तरकाड १११ । २ उत्तरकाड १२४ । ३ उत्तरकाड १११ । ४ अयोध्याकाड ३४ । ५ अयोध्याकाड २७ । ६ अयोध्याकाड ९४

संत सहहिं दुख परहित लागी   : ६ :

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बदनीय जेहि जग जस पावा ॥[१]
सत असतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगध बसाई ॥

तातें सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥

विपय अलपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन। साति बिरति विनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सव लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात सत सतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहि। परुप बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुनमदिर सुख पुंज ॥[२]

पर उपकार वचन मन काया। सत सहज सुभाउ खगराया ॥
सत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेतु असत अभागी ॥
भूर्ज तरु सम सत कृपाला। पर हित निति सह विपति विसाला ॥[३]
सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता ॥[४]

---

१ बालकाड १।   २ उत्तरकाड ३७-३८।   ३ उत्तरकाड १२०
४ उत्तरकाड १२४

प्रथम भगति सतन्ह कर सगा। दूसरि रति मम कथा प्रसगा ॥

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ॥

मत्र जाप मम दृढ बिस्वासा। पचम भजन सो वेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहुकरमा। निरत निरतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते सत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ सतोषा। सपनेहु नहि देखइ पर दोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अन्तर ॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहि कछु चहिअ दिआ घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहि ताहि बुझावा ॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाही। बसइ भगति जाके उर माही ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दभ न जाके। तात निरतर बस मैं ताके ॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ॥

बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥

---

१ अरण्यकाड ३४-३५। २ उत्तरकाड ११९। ३ अरण्यकाड १५।
४ सुन्दरकाड ४३। ५ उत्तरकाड ६१-६२

मोह न अंध कीन्ह केहि केही ? : ८ :

मोह न अध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।।
तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा । केहिकर हृदय क्रोध नहि दाहा ।।

ग्यानी तापस सूर कवि, कोबिद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडम्बना, कीन्हि न एहिं ससार ।।
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि के नैन सर, को अस लागु न जाहि ।। [१]

जोग बियोग भोग भल मदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फदा ।।
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू । सपति विपति करमु अरु कालू ।।
धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मनमाही । मोह मूल परमारथु नाही ।।

सपनें होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति होइ ।
जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ जोइ ।।

मोहनिसाँ सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ।।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपच बियोगी ।।
जानिअ तबहि जीव जग जागा । जब सब विषय विलास बिरागा ।।
होइ बिवेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।। [२]

---

१ उत्तरकाड ६९-७० । २ अयोध्याकाड ९१-९२

कारन बिनु रघुनाथ कृपाला

प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सीलनिधान ॥[1]

सकल बिघ्न व्यापहि नहि तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहि जेही ॥[2]
कोमल चितअति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥[3]

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥[4]
रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥[5]

---

१ बालकाड, २९। २ बालकाड, ३८। ३ आरण्यकाड ३२।
४ अरण्यकाड ४२। ५ उत्तरकाड ८८

धर्म क्या कहता है ?

लेखक : श्रीकृष्णदत्त भट्ट

धर्म मानव-जीवनकी आधार-शिला है। मानवके विकासमें, उसकी उन्नतिमे धर्मका बहुत बडा स्थान है। भिन्न-भिन्न धर्मोके ऊपरी आचारोमें हमें अन्तर दिखाई पडता है अवश्य, पर हम उनके भीतर घुसकर देखें, तो पता चलेगा कि सभी धर्मोके हृदयसे एक ही त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है सत्य, प्रेम और करुणाकी।

हमारी 'धर्म क्या कहता है ?'—पुस्तक-मालामे भिन्न-भिन्न धर्मोका सरल और रोचक परिचय दिया गया है—हर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्धके लिए आवश्यक, 'हित मनोहारि'।

१. धर्मोंकी फुलवारी (सब धर्मोंकी सामान्य जानकारी)
२ वैदिक धर्म क्या कहता है ? (पहला भाग वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्)
३. वैदिक धर्म क्या कहता है ? (दूसरा भाग : स्मृति, वाल्मीकि-रामायण, योगवाशिष्ठ, महाभारत, दर्शनशास्त्र)
४. वैदिक धर्म क्या कहता है ? (तीसरा भाग : गीता, पुराण, भागवत, तुलसी-रामायण)
५. जैन धर्म क्या कहता है ?
६. बौद्ध धर्म क्या कहता है ?
७. पारसी धर्म क्या कहता है ?
८. यहूदी धर्म क्या कहता है ?
९. ताओ और कनफ्यूश धर्म क्या कहता है ?
१०. ईसाई धर्म क्या कहता है ?
११. इस्लाम धर्म क्या कहता है ?
१२. सिख धर्म क्या कहता है ?

हर पुस्तककी पृष्ठ-सख्या लगभग ८० और मूल्य ६० नये पैसे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१